जेएनयू में छात्र संघ की जीत के मायने

जेएनयू छात्र संघ चुनाव में इस साल भी वामपंथी उम्मीदवार मुख्य चार सीटों पर जीत गये। जीत का अन्तर भी पिछले साल से ज्यादा रहा है। राजस्थान, हिमाचल प्रदेश ओर त्रिपुरा के छात्र संघ चुनावों में भी वामपंथी विशेषकर सीपीएम के छात्र संगठन एसएफ़आई ने भारी जीत हासिल कर बीजेपी की छात्र इकाई एबीवीपी का लगभग सूपड़ा ही साफ़ कर दिया है। वामपंथ के खात्मे की बात करने वालों के मुंह पर ये एक तमाचा है। इसे सीपीएम के किसान संगठन-किसान सभा के राजस्थान में चल रहे किसानों के अभूतपूर्व संघर्ष और उसमें किसानों की जबरदस्त भागीदारी की रोशनी में भी देखने की जरूरत है।

लेकिन सबसे महत्वपूर्ण जीत जेएनयू की है जिसमें एबीवीपी को बुरी तरह हराकर छात्रों ने ना सिर्फ़ जनरल बख्शी की मूंछे उखाड़कर फेंक दी बल्कि भाजपा के इस यूनिवर्सिटी को 'वंदे मातरम' यूनिवर्सिटी बनाने के मंसूबो पर फिलहाल पानी फेर दिया। इसके बावजूद भी भाजपा-संघ के कैलाश विजयवर्गीय ने ट्रवीट्र पर जेएनयू में देशद्रोहियों की हार और राष्ट्रवादियों की जीत पर बधाई दी।

जेएनयू में छात्र संघ के प्रधान और उप प्रधान पद पर आईसा, सेक्रेटरी पर एसएफ़ आई और ज्वाईंट सेक्रेटरी पर डीएसएफ़ के उम्मीदवार जीते हैं। जबकि 30 काऊंसलर के पदों में से 13 पर वामपंथी, 10 पर एबीवीपी, 2 पर एनएसवीआई, 1 पर आईसा व 4 पर अन्य जीते हैं। इन नतीजों पर खुश होने के साथ-साथ इसके दूरगामी परिणाम वाले संकेतों पर भी नज़र डालने की जरूरत है।

बिजेता नतीजों से पता चलता है कि प्रधान पद के वाम उम्मीदवार को लगभग 1400 वोट और बीजेपी की एबीवीपी के उम्मीदवार को लगभग 900 वोट मिले। कमोबेश सभी पदों पर वोटों के बंटवारे की यही स्थिति है। वामपंथी उम्मीदवार को लगभग 34 प्रतिशत तो एबीवीपी को 22 प्रतिशत मत मिले। पहले से ज़्यादा मत और ज्यादा अंतर से जीतने के बावजूद ये ध्यान देना चाहिये कि ये मत तीन वामपंथी छात्र संगठनों को मिलाकर मिले हैं और एबीवीपी को अकेले दूसरी तरफ़ काऊंसिलर में भी एबीवीपी को अकेले सबसे ज़्यादा 10 सीटें मिली है। जबकि वामपंथी संगठनों को सबको मिलाकर 13 सीटें । निश्चित तौर, जहां अकेले कभी एसएफआई सारी सीटें जीतती थीं, वहां एबीवीपी की इस जीत ने उसे जेएनयू में अकेले सबसे बड़े छात्र संगठन के रूप में स्थापित कर दिया है। उसका वोट प्रतिशत अन्य संगठनों के अकेले -2 वोट प्रतिशत से ज्यादा है। इसलिये ये जीत, जीत कर भी वामपंथियों के लिये चिंतनीय है। ये बिहार में हुये महागठबंधन की जीत जैसी है, जो कभी भी हार में बदल सकती है।

जेएनयू भारत सरकार द्वारा मुख्यतया सामाजिक शोध के लिये स्थापित की गयी थी और उसने अपने उच्चस्तरीय शोध कार्यों और शैक्षणिक स्तर के जरिये विश्व में एक ऊंचा रुतबा हासिल किया है। इसने देश को भी बड़े अच्छे नेता और अफ़सर दिये हैं, चिंतक दिये हैं। लेकिन क्योंकि हर प्रगतिशील और मौलिक चिंतन आप को वैज्ञानिकता और नास्तिकता की तरफ़ ले जाता है जिसका एकमात्र दर्शन अभी तक मार्क्सवाद ही है। इसलिये स्वाभाविक ही इस पूरी यूनिवर्सिटी का रुझान वामपंथी हो गया और वास्तव में तो हर काम करने वाली संस्था का ये रुझान होना चाहिये था। लेकिन यहां इस देश में पोंगापंथियों और धर्मांधों की जमात ने ऐसा होने नहीं दिया। यही जमात एबीवीपी और बीजेपी की अगुवाई में जेएनयू को भी पीछे धकेलना चाहती है। इस दृष्टिकोण से भी हमें जेएनयू के कुछ और बदलावों को समझने की जरूरत है।

जेएनयू क्योंकि सामाजिक शोध के लिये स्थापित की गयी थी इसलिये इसमें समाज विज्ञान के विभाग ज़्यादा है और भौतिक विज्ञान आदि के कम। पूरे समाज के विकास को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पढते हुए क्योंकि छात्र वामपंथी होते जा रहे थे इसलिये सरकार ने वहां भौतिक विज्ञान के विभागों को बढाना शुरू कर दिया है। ध्यान दे कि छात्र संघ चुनावों में भी भौतिक विज्ञान के विद्यार्थी सबसे ज़्यादा एबीवीपी को वोट देते हैं। यानि कि विज्ञान की पढाइ करते हुए भी वो एक अवैज्ञानिक दृष्टिकोण की तरफ जाते हैं। वाह री हमारी विज्ञान की पढाई।

दूसरी जेएनयू की सबसे बड़ी खासियत है यहां का आरक्षण, जो कि पूरे देश में अनूठा है। इसमें महिलाओं और उसमें भी दूर दराज के इलाकों के लिये, जहां भी पढाई की सुविधायें कम है, उनके लिये विशेष आरक्षण है। इस खास आरक्षण सिस्टम की वजह से यहां समाज के सबसे दलित, शोषित और वंचित तबकों से ज्यादा छात्र आते ये जिनके लिये वामपंथी दर्शन, नकली देशभक्ति के दर्शन से ज्यादा आकर्षक था। इसलिये वामपंथ के हर साल दाखिल होने वाले नये फौजियों को रोकने के लिये सरकार ने इस साल से यहां के आरक्षण सिस्टम को बदलना शुरू कर दिया है। इससे वामपंथियों की संख्या तो कम होगी लेकिन साथ ही वो अनेक लोग उच्च शिक्षा से वंचित हो जायेंगे जो पिछड़े और दूर दराज के इलाकों से आते थे।

तीसरी ओर सबके महत्वपूर्ण विशेषता यहां का उच्चस्तरीय शोधकार्य है। इसे भी बीजेपी, यूजीसी से हुक्मनामे जारी करके बरबाद करने पर तुली हुई है।

इन तीनों दिशाओं से हमला करके बीजेपी सरकार इस विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय को बर्बाद कर देना चाहती है। सिर्फ़ अपने राजनैतिक फ़ायदे के लिये। यानि कि सामाजिक विज्ञान की जगह भौतिक विज्ञानों के विभाग बढाकर, पिछड़े इलाकों और महिलाओं का आरक्षण खत्म करके और शोध कार्यों को घटा करके। इन सबसे निश्चित रूप से बीजेपी के छात्र संगठन की वोट बढेगी लेकिन एक उच्च स्तरीय विश्व प्रसिद्ध शिक्षण संस्थान बर्बाद हो जायेगा। इसलिये छात्रसंघ के इन चुनावों पर ज्यादा खुश होने की जरूरत नहीं है क्योंकि अगले साल तक जब भाजपा सरकार की इस विश्वविद्यालय को बर्बाद करने के लिये उपरोक्त तीनों नीतियों पर अमल पूर्ण हो जायेगा तो छात्रसंघ चुनाव के वाम महागठबंधन भी वामपंथियों को नहीं जिता पायेगा। 2019 का चुनाव वहां एवीवीपी जीतेगी, ये आज वहां लिखी जा रही इबारत बता रही है।

-अजातशत्रु

स्टूडेंट यूनियन के बदलते आयाम

जेएनयू स्टूडेंट यूनियन पर काबिज होने के लिए आरएसएस इतना उद्वेलित क्यों दिखता है? इस बार उनके छात्र संगठन विद्यार्थी परिषद् के छात्र संघ चुनाव में गत वर्षों के मुकाबले कुछ वोट क्या बढ़ गए, वे इन आंकड़ों को बंदरिया के मरे बच्चे की तरह छाती से चिपटाए छलांगे लगाते देखे जा रहे हैं इसी तरह दिल्ली विश्वविद्यालय स्टूडेंट यूनियन के अध्यक्ष पद पर पांच वर्ष बाद कांग्रेसी छात्र संगठन एनएसयूआई को मिली जीत का जश्न पार्टी ने ऐसे मनाया जैसे वे लोकसभा चुनाव जीत गए हों क्यों? साल दर साल लेफ्ट जेएनयू में जीतता चला आ रहा है, उन पार्टियों ने क्या तीर मार लिए?

दुनिया के विभिन्न देशों में 'स्टूडेंट यूनियन' कहने से जो भी मतलब ध्वनित होता हो, भारत में यह संसदीय राजनीति का ही पूरक रहा है, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध, राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़ने के गांधी जी के छात्रों से बलिदानी आह्वान ने इस भागीदारी को अमिट आभा मंडल प्रदान किया स्वतंत्र भारत में छात्र राजनीति के कई उतार-चढ़ाव भरे दौर देखे गये, और उसी अनुपात में इस आभा की चमक भी तेज, मंद या फीकी रही। सत्तर के दशक का जेपी आन्दोलन, 89-90 का मंडल आरक्षण संघर्ष और हालिया कन्हैया कुमार जेएनयू प्रकरण बताते हैं कि सत्ता राजनीति के लिए स्टूडेंट यूनियन पर भौतिक और वैचारिक पकड़ बनाना इतना महत्त्व क्यों रखता है।

छात्र और राजनीति के परस्पर हिरावल सम्बन्ध पर राष्ट्र के सर्वकालिक आइकॉन भगत सिंह के 1928 में कलम बद्ध विचारों से आज भी प्रेरणा लेने वालों की कमी नहीं है। उनकी टिप्पणी के ये अंश देखिये-

इस बात का बड़ा भारी शोर सुना जा रहा है कि पढ़ने वाले नौजवान राजनीतिक या पोलिटिकल कामों में हिस्सा न लें । पंजाब सरकार की राय बिल्कुल ही न्यारी है । विद्यार्थियों से कालेज में दाखिल होने से पहले इस आशय की शर्त पर हल्ताक्षर करवाये जाते हैं की वे पोलिटिकल कामों में हिस्सा नहीं लेंगे । आगे हमारा दुर्भाग्य कि लोगों की ओर से चुना हुआ मनोहर, जो अब शिक्षा मंत्री है, स्कूल कालेजों के नाम एक सर्कुलर भेजता है कि कोई पढ़ने पढ़ाने वाला पोलिटिक्स में हिस्सा न ले । कुछ दिन हुए जब लाहौर में स्टुडेंड्स की ओर से विद्यार्थी सप्ताह मनाया जा रहा था । वहाँ भी सर अब्दुल कादर और प्रोफेसर ईश्वरचन्द्र नन्दा ने इस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थियों को पोलिटिक्स में हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

हमारी शिक्षा निकम्मी होती है और फिजूल होती है। विद्यार्थी युवा-जगत अपने देश की बातों में कोई हिस्सा नहीं लेता। उन्हें इस संबंध में कोई भी ज्ञान नहीं होता। जब वे पढ़कर निकलते हैं तब उनमें से कुछ ही आगे पढ़ते हैं लेकिन वे ऐसी कच्ची कच्ची बातें करते हैं कि सुनकर स्वयं ही अफ़सोस कर बैठ जाने के सिवाय कोई चारा नहीं होता। जिन नौजवानों को कल देश की बागडोर हाथ में लेनी है, उन्हें आज ही अक्ल के अन्धे बनाने की कोशिश की जा रही है । इससे जो परिणाम निकलेगा वह हमें खुद ही समझ लेना चाहिए। यह हम मानते हैं कि विद्यार्थियों का मुख्य काम पढ़ाई करना है, उन्हें अपना पूरा ध्यान उस ओर लगा देना चाहिए लेकिन क्या देश की परिस्थितियों का ज्ञान और उनके सुधार के उपाय सोचने की योग्यता पैदा करना उस शिक्षा में शामिल नहीं है? यदि नहीं तो हम उस शिक्षा को भी निकम्मी समझते हैं जो सिर्फ क्लर्की करने के लिए हासिल की जाए। ऐसी शिक्षा की ज़रूरत ही क्या है? कुछ ज़्यादा चालाक आदमी यह कहते हैं कि काका तुम पोलिटिक्स के अनुसार पढ़ो और सोचो ज़रूर लेकिन कोई व्यावहारिक हिस्सा न लो। तुम अधिक योग्य होकर देश के लिए फ़ायदेमन्द साबित होगे ।

सभी मानते हैं कि हिन्दुस्तान को इस समय ऐसे देश सेवकों की ज़रूरत है जो तन मन धन देश पर अर्पित कर दें और पागलों की तरह सारी उम्र देश की आजादी के लिए न्योछावर कर दें। लेकिन क्या बुड्ढों में ऐसे आदमी मिल सकेंगे? क्या परिवार और दुनियादारी के झंझटों में फँसे सयाने लोगों में से ऐसे लोग निकल सकेंगे? यह तो वही नौजवान निकल सकते हैं जो किन्हीं जंजालों में न फँसे हों और जंजालों में पड़ने से पहले विद्यार्थी या नौजवान तभी सोच सकते हैं यदि उन्होंने कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी हासिल किया हो । सिर्फ गणित और ज्योग्राफ़ी का ही परीक्षा के पर्चों के लिए घोंटा न लगाया हो ।

स्वतंत्रता मिलने के बाद भारतीय नीतिकारों ने सहज ही शिक्षा को रोजगार से जोड़ दिया। यह समाज में तेजी से पसरते मध्य वर्ग की आशाओं के अनुरूप भी था। हालाँकि साठ के दशक के बीतते न बीतते इस गुब्बारा कवायद का फटना सभी पर जग जाहिर हो गया। समझना मुश्किल नहीं कि दिशाहीन स्टूडेंट यूनियन का एक लम्बा दौर इसी की परिणति रहा होगा। इसी तरह नब्बे के दशक में उदारीकरण-निजीकरण-वैश्वीकरण से नत्थी होती अर्थव्यवस्था ने स्टूडेंट यूनियनों के पालतू और पिछलग्गू चरित्र को रेखांकित किया। अंततः, कन्हैया कुमार-रोहित वेमुला प्रकरण को स्टूडेंट यूनियन के जुझारूपन को रेखांकित करने का श्रेय दिया जाना चाहिए

फिलहाल, नयी सहस्राब्दी के भारत में पारंपरिक शिक्षा के बजाय कौशल केन्द्रों पर जोर है। जिस अनुपात में इस व्यवस्था को रोजगार के अवसरों से जोड़ जा सकेगा, वह आगामी वर्षों में स्टूडेंट यूनियन गतिविधियों का मानक बनेगा। अमेरिका में स्टूडेंट यूनियन का मतलब छात्रों के सामाजिक और सांस्कृतिक केंद्र से होता है, न कि उनकी राजनीतिक और आर्थिक हताशा को हवा देने वाले अवसरों से। उन्होंने अपने नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा और उनके सामुदायिक सामंजस्य को लेकर जो लोकतांत्रिक मंजिलें तय की हैं, यह उसका भी असर है। जाहिर है, भारतीय राष्ट्र को इस दिशा में अभी लम्बा सफर तय करना है।

हाल में संपन्न हुए जेएनयू और दिल्ली विश्वविद्यालय स्टूडेंट यूनियन चुनाव, मीडिया में राष्ट्रवाद के विभाजक आयामों की शक्ल में भी छाये रहे हैं। सत्ता राजनीति के रुझानों को देखते हुए यह प्रवृत्ति अन्य विश्वविद्यालयों में कांटे के यूनियन चुनावों में भी बने रहने की संभावना है। क्या कोई और रास्ता हो सकता है? मुझसे पूछिए तो मैं किसी भी स्टूडेंट यूनियन के सामने बतौर चुनौती, प्राचीन भारतीय विवेक 'वसुधैव कुटुम्बकम' को, सांस्कृतिक परचम बनाने का कार्यभार रखना चाहूँगा। उनके लिए, समाज निरपेक्ष शिक्षा या समाज निरपेक्ष कौशल की भूल-भुलैय्या से निकलने की सार्थक राजनीतिक पहल तभी संभव हो पायेगी।

-विकास नारायण राय

बहुत कम लोगों को पता होगा कि आजादी की लड़ाई में आरएसएस के लोगों ने भी अंग्रेजों से लोहा लिया था और बाद में कबाड़ी को बेच दिया था----

स्वच्छता अभियान के चलते स्मार्ट शहर की दुर्दशा

फ़रीदाबाद (म.मो.) गत तीन वर्षों से देश में मोदी और हरियाणा में खट्टर स्वच्छता अभियान का ढोल पीटने के साथ-साथ 'स्मार्ट सिटी' की पीपनी पूरे ज़ोर-शोर से बजा रहे हैं। तमाम छोटे-बड़े नेता व अफ़सर हाथों में झाड़ू थाम कर फ़ोटो खिंचवाने में जुटे हैं। इस ड्रामेबाज़ी पर सरकार चला रहे मदारियों ने देश का अरबों रूपया फूंक दिया। फूंके क्यों नहीं जब इस काम के लिये विशेष स्वच्छता टैक्स जो लगा दिया, आखिर वह किस काम आयेगा?

उक्त स्वच्छता टैक्स के अतिरिक्त नगर निगम स्मार्ट सिटी के नाम पर नये-नये टैक्स जनता पर लादने की जो तैयारी कर रही है वह अलग से। इस सबके बावजूद पूरा शहर गंदगी से भरा पड़ा है। बारिश की चार बूंदे बरसते ही पूरा शहर गंदे कीचड़ से भर जाता है। शहर की पुरानी कॉलोनियों की बात तो छोड़िये नवनिर्मित पॉश सेक्टरों में शायद ही कोई गली ऐसी होगी जिसका सीवर जाम न हो। यही जाम सीवर ज़रा सी बारिश में उफ़न कर सड़कों-गलियों को सड़ांद मारते कीचड़ से भर देते हैं।

बाकी शहर की दुर्दशा तो छोड़िये शहर के बीचों-बीच चल रहे राष्ट्रीय राजमार्ग के किनारों का ही हाल देख लिया जाय। साइकिल ट्रैक या फुटपाथ की तो बात ही क्या कोई इसके किनारे-किनारे चलना भी चाहे तो आसान नहीं है। दिनांक 7 अगस्त को इस संवाददाता ने अजरोंदा मैट्रो स्टेशन से उतर कर अजरोंदा चौंक तक चलने का प्रयास किया तो महसूस हुआ कि मात्र 600 मीटर का यह पैदल चलना न केवल कठिन है। जोखिम-भरा भी है।

स्टेशन से बाहर निकलते ही सड़क पर पानी खड़ा था और थोड़ी सूखी जगह पर आटो वालों का कब्जा था। करीब 20 मीटर के बाद एक वैध सर्विस स्टेशन पर धुलने आई कारों ने रास्ता जाम कर रखा था। उससे थोड़ा आगे चलते ही 10 गुणा 10 का गड्ढा खुला पड़ा है, जो शायद सीवर लाइन का है, और बरसों से ऐसे ही पड़ा है। इससे थोड़ा आगे चलें तो मिट्टी के ढेर, जो पड़े-पड़े जम गये हैं। बारिश की चार बूंदों का पानी सड़क के किनारे ही रहता है, कहीं जा नहीं सकता वहीं जब सूखेगा तब सूखेगा। उसके साइड में छोटे बड़े ट्रकों ने अपना अड्डा बना रखा है। यानी पैदल चलने वाला न चाहते हुए भी जोखिम उठा कर पक्की सड़क पर चलने को मजबूर होता है।

इस संवाददाता ने यह सारा मामला ज़िले के उपायुक्त महोदय समीरपाल सारों को बताया, उनके कहने पर एसएमएस भी किया। उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे इसे देखेंगे। अब सवाल यह पैदा होता है कि वे बेचारे क्या-क्या और किस-किस को देखें? यहां तो सारे ही 52 हाथ के हैं, सब के सिर पर किसी न किसी नेता का वरद हस्त रहता है। इसके चलते कोई किसी की परवाह नहीं करता। सबका एक ही नारा है: 'हरामखोरी व रिश्वतखोरी'। काम कोई करना नहीं केवल लूटने-खाने की जुगाड़बाज़ी पर ही सब का ध्यान रहता है।

पूर्व सरकारों की तरह खट्टर सरकार को भी यही कार्यशैली पसंद है। इसीलिये नगर निगम कमिश्नर का पद अधिकांश समय खाली रहता है। कोई तैनात होता भी है तो मात्र कुछ समय के लिये। जब तक उसे कुछ समझ आती है उसको चलता कर दिया जाता है। इसका सबसे बड़ा लाभ हरामखोर व रिश्वतखोर अफ़सरों व कर्मचारियों को मिलता है। वैसे तो कमिश्नर के होने न होने से भी इस निरंकुश निगम पर कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता। पिछले दिनों जब यहां सोनल गोयल कमिश्नर थी तो ही कौनसी जनता को विशेष राहत थी और अब दो माह के बाद, रिक्त पड़े इस पद को भरने से ही क्या राहत मिल जायेगी? हां, स्मार्ट सिटी के नाम पर सोनल गोयल की तरह 2-4 विदेश यात्रायें नये कमिश्नर पार्थ गुप्ता जी भी कर आयेंगे। जहां तक बात है जनता द्वारा चुने गये पार्षदों की तो उनकी तो प्रशासन रत्ती भर भी परवाह नहीं करता। अधिकांश पार्षद किसी न किसी सत्तारूढ नेता से जुड़े हैं, इसलिये प्रशासन सीधे उन नेताओं से ही बात कर लेता है। कुछ पार्षद अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति कराने के लक्ष्य को लेकर प्रशासन की चापलूसी में ही अपनी भलाई देखते हैं। इन्हीं की बदौलत शहर में अवैध निर्माण व अतिक्रमण दिन ब दिन बढता जा रहा है। ऐसे पार्षद निगमकर्मियों के भ्रष्टाचार पर नकेल कसने की अपेक्षा उसमे अपनी हिस्सेदारी कर लेते हैं।